# मर्ज

ओमा शर्मा

हिन्दी ADDA

# मर्ज

https://www.hindiadda.com/marj-oma-sharma/

कहाँ से बताऊँ मामूजान की दास्ताँ।

शुरुआत से ही अर्ज है।

अपने महकमे के किसी काम से ही मामू आए थे। मुरादाबाद काम निपटाकर। बड़े भाई फरहत के दसवीं में दुबारा लुढ़क जाने से अम्मी और अब्बा दोनों परेशान थे। कस्बे में लटूरों की सोहबत का सूरतेहाल यह था कि उन्हें लेकर अम्मी अपनी खानाखराबी को खूब कोसतीं, मगर मजाल कि फरहतभाई के कानों पर जूँ भी रेंगती हो। सारे हालात को मद्देनजर करके मामू बोले थे, 'बिलकिस, फरहत तो अब भट्टी से निकला घड़ा हो गया है, उसे तब्दील करना मुश्किल है।

अब तुम नजीर मियाँ पर तवज्जो दो। वो अभी छोटा है, होनहार है। कमजकम एक लड़का तो इस अवट (क्रिकेट) की गिरफ्त से बचे। लड़कियाँ ज्यादा न पढ़ें-लिखें तो चलता है। निकाह के बाद तो बोझ नहीं रहतीं, मगर लड़कों की नालायकी ताउम्र सालती है और तुम अपना दिल पुख्ता कर पाओ तो एक सलाह है। नजीर को मैं दिल्ली लिए जाता हूँ। अभी इन्होंने आठवीं जमात पास की है ना! यही मुनासिब वक्त है, नौवीं में वहीं दाखिला करा देंगे। (मेरा पूछने का मन हुआ, मामू क्या आप नहीं, कोई और कराएगा)।

दसवीं-बारहवीं का बोर्ड वहीं से दे लेंगे तो इनकी जिंदगी बन जाएगी। हकीकत बात है, जगह का बहुत फर्क पड़ता है। वहाँ एक माहौल है। यहाँ तो बस गली-मुहल्ले की मवालियत से ही फुर्सत नहीं मिलती होगी। वहाँ पढ़ने-लिखनेवाले इफरात में हैं, कोई वजह नहीं कि वहाँ इनका कैरियर न बन पाए। अब अपने इरशाद और सगीर को ही ले लो। पढ़ने-लिखने में वो कोई खास नहीं थे, मगर अल्ला के फजल से अच्छा ही कर रहे हैं। एक ने (यानी इरशादभाई) तो बी.एस.सी. के बाद बंगलौर में कंप्यूटर का डिप्लोमा ज्वॉइन कर लिया है और दूसरे (यानी सगीरभाई) ने बी.कॉम के साथ-साथ सी.ए. (चार्टेर्ड एकाउंटेंट) की भी पढ़ाई शुरू कर रखी है। साल दो साल में दोनों, इंशाअल्ला, मुकम्मल खाने कमाने लगेंगे। रही बात सबीना की तो उसे बी.ए. किए दो साल से ऊपर हो आए। कुछ रिश्ते आ रहे हैं, कुछ हम ढूँढ़ रहे हैं। अब देखो उसकी तकदीर क्या गुल खिलाती है। तुम सोच लो... और इसमें सोचना कैसा दिल्ली और चंदौसी में फासला ही कितना है, जब चाहो मिल लिया करना।'

अम्मी थोड़े अनमने में थीं। अपनी पढ़ाई के साथ घर की साग-सब्जी, राशन पानी लाने-लूने में मैं अम्मी का हाथ बँटा दिया करता था। इसके अलावा छोटा होने के कारण भी शायद वे मुझे ज्यादा चाहती थीं। अब्बा उनकी तबीयत भाँप गए। मामू की

हाजिरी में ही बोले, 'भई, हबीबभाई वजा फरमा रहे हैं। तुम अपने चंद कामकाजों की बनिस्बत लड़के की जिंदगी को तरजीह दो। यहाँ रहकर तो फरहत के नक्शेकदमों पर ही चलेगा... इसकी जिंदगी बनेगी तो अपना बुढ़ापा भी।'

तुरंत तो नहीं, मगर जल्द ही अम्मी मान गईं और अगले जुम्मे को अब्बा मुझे दिल्ली छोड़ भी आए। दिल्ली बड़ा शहर है, इसलिए मुझे थोक में हिदायतें थीं कि मैं अपना ध्यान कहीं और न भटकने दूँ। यूँ खबरों या जरूरी मालूमात के लिए टेलीविजन देखना कोई गुनाह भी नहीं था।

अब्बा ने चलने से पहले खर्चे वगैरह के लिए कुछ रकम मामूजान को पकड़ाई तो वे भड़क उठे, 'क्यों तौहीन करते हैं अनवर साहब, जैसे इरशाद और सगीर हैं, वैसे ही अब नजीर मियाँ हैं... कोई बोझ थोड़े ही हैं।'

'इसमें तो कोई शक-शुबहा है ही नहीं, पर भाईजान माँ-बाप की भी कोई खुशी या फर्ज हो सकता है कि नहीं?'

शुक्र था ज्यादा हील-हुज्जत नहीं हुई।

मेरे यहाँ आने के हफ्ते बाद ही मामू सामनेवाले गोविल साब के यहाँ मेरे दाखिले के सिलसिले में तफ्तीश करने गए थे। वैसे गोविल साहब के प्रति मामूजान के खयालात का बित्तेभर इल्म मुझे गई शाम ही हो गया था, जब मामूजान ने हिदायत और मशविरे का मलीदा मुझे परोसा, 'हम हैं छोटे आदमी। यूँ अल्ला की मेहरबानी में कमी नहीं है, लेकिन बरकत का ही खाते हैं। सामनेवाला जो गोविल है, अनाप-शनाप कमाता है। सेल टैक्स में जो है।' यहाँ तक तो ठीक था, मगर मेरे कमर फेरते ही वे अपने पर बुदबुदाए... हराम का पैसा कभी फला है किसी को!

जहाँ तक मेरी समझ है तो मामला यही था कि दाखिले के सिलसिले में मामू पहले चार कदम दूर रहनेवाले उन हजरत के पास गए थे जो कृष्णनगर के उसी स्कूल में अध्यापक थे। दो दिन की दरयाफ्त के बाद जब उन्होंने हाथ खड़े कर दिए तो मामू ठगे से रह गए। वे तो उन्हीं पर दारोमदार लगाए बैठे थे। 'दुनिया में रत्तीभर इखलाख नहीं बचा है, पैसे ने किस-किस की रोशनी नहीं छीनी।' मामू तमतमाए थे। उसी रोज सगीर भाई अपने कुछ कागजात गोविल साहब के यहाँ अटैस्ट कराकर लाए थे, सो उन्हीं का नाम सुझा दिया। मामू का मन नहीं था। लिहाजा एक-दो रोज पसोपेश में पड़े रहे लेकिन कोई दूसरा जुगाड़ नजर नहीं आया तो लाचार होकर... गोविल को वे शातिर जुर्मवार मानते थे। उसकी मदद लेने का मतलब था कहीं न कहीं उसके गुनाहों में

शरीक होना, जो उन्हें गवारा न था। मगर यह भी था कि उन्हें मेरे मुस्तकबिल और अम्मी-अब्बा के प्रति अपनी जवाबदेही की भी चिंता थी।

गोविल साहब के यहाँ जाते-जाते मुझे भी साथ ले लिया। उन्होंने बड़ी खुशमिजाजी से बिठाकर हमें शरबत पिलाया और बड़े इत्मीनान से वायदा किया कि जिस स्कूल में जाफर साहब चाहेंगे, मेरा एडमिशन हो जाएगा। दिल्ली सरकार के शिक्षा विभाग का कोई उपनिदेशक उन्हीं के बैच का था। (ये बैच क्या होता है, मेरे पल्ले नहीं पड़ा, घर आकर सगीर भाई ने समझाया)। मेरे कागजात की एक-एक नकल अपने पास रखवा ली थी। लौटते वक्त मामू के चेहरे पर कुछ राहत तो झलक रही थी, मगर कई परतों से छन-छनकर। गोविल के ड्राइंग रूम में पसरे दो पीतल के वजनदार चीतों और गलीचे को देखकर मामू को गोकि गोविल की बातों पर शुबहा था : इतना मतलबपरस्त आदमी किसी का काम यूँ ही क्यूँ कराएगा। इसलिए घर आते ही उसाँस लेकर बोले, 'अब देखते हैं नजीर मियाँ, तुम्हारी तकदीर को क्या मंजूर है।'

गर्मी की छुट्टियों के बाद नया सैशन चालू हुए दो-चार रोज बीत चुके थे। मामू सुबह दफ्तर निकल जाते तो शाम को ही लौटते। इरशाद भाई तो बंगलौर में ही थे। सगीर भाई करीब आठ बजे तक लौटते। कभी-कभार तो उन्हें ग्यारह-बारह भी बजते, (तब वो बताते कि ऑडिट के सिलसिले में उन्हें एक क्लाइंट की गुड़गाँव या नजफगढ़ फैक्टरी में जाना पड़ा था।) उन्हें जितना स्टाईपेंड मिलता था, उसमें महीने का बस का किराया निकलने के बाद चाय-पानी के लायक ही बमुश्किल कुछ बचता था। घर पर बचते मैं, मामी और सबीना दीदी। मामी तो अम्मी की तरह घर के कामकाज और सफाई में मशरूफ रहतीं, पर सबीना दीदी तो पूरी निठल्ली होकर ऊँघती रहतीं। पड़ोस से माँगकर लाई सरिता-मुक्ता या गृहशोभा के भी वरक पलटने में उन्हें उबकाई आती। या हो सकता है वे उन्हें कब तक पढ़तीं बहरहाल चर्बी उन पर काफी चढ़ आई थी। निठल्ला तो मैं भी था, मगर इसकी वजह स्कूल में दाखिले की देरी थी।

शाम को एक दिन मैं टहलकर आया तो मामू घर पर चाय पी रहे थे। 'आज मामूजान कुछ जल्दी' मैंने चकित होकर पूछा तो बोले, 'हाँ, नजीर मियाँ, तुम्हारे ही सिलसिले में एक जगह गया था। उसके बाद सीधा घर ही चला आया। वाइस प्रिंसिपल से एक जान-पहचान निकाली है। अब देखो।' मामू का चेहरा मुरझैल था। पता नहीं कहाँ-कहाँ की ठोकरें खाकर आ रहे होंगे। मुझे मामू पर तरस और खुद पर अफसोस हो आया। मगर मैं करता भी क्या, सिवाय मन ही मन कसम खाने के कि मामू बस दाखिला करा दो, फिर देखना मैं कैसे अव्वल नंबरों से...। मेरी चुप्पी को पढ़कर मामू ने ही टहेला,

'भाई नजीर मियाँ, तुम्हारी एक बात हमारी समझ में नहीं आई... तुम चाय भी नहीं पीते हो।'

'चाय कोई नियामत तो है नहीं मामूजान कि बिना पीए गुजारा न हो, आपको तो पता ही है, घर पर अम्मी, अब्बा, फरहत भाई सब पीते थे, मैंने कभी नहीं पी। चाय से खाली-पीली कुछ होता भी है।' मेरे जवाब में पता नहीं कैसे चंदौसी घुल आई।

'अरे नहीं माशाअल्ला, अच्छी आदत है, मगर वो क्या है नजीर मियाँ कि दूध दही तो तुम जानते हो यहाँ कैसा है बीस रुपए किलो में क्या तो कोई पिए और क्या पिलाए शहर में रहकर पचास तरह के खर्चे अलैदा' मामू जैसे किसी जुर्म के साए में सफाई देने लगे।

'वैसी कोई बात है ही नहीं मामू, आप अम्मी से पूछ लेना, दूध या दूध की चीजों से मुझे बचपन से ही एलर्जी-सी है।'

मेरे बयान से उन्हें कितनी तसल्ली हुई, ये तो पता नहीं, मगर मेरी आदतों के बरक्स थोड़ी राहत वे जरूर महसूस करते थे। हर सुबह उठकर कृष्णनगर की मदर डेयरी से एक लीटर दूध और हर तीन चार रोज में शाहदरा मंडी से सब्जियाँ मैं लाने लगा था। थोड़ा-बहुत इधर-उधर का परचून भी। यह सब करने में मुझे कतई तकल्लुफ इसलिए नहीं होता थी कि एक तो यह सब मैं चंदौसी में करता ही था, दूसरे, घर से बाहर निकलने का भी यह अच्छा जरिया था। फिर मुझे कौन सा पैदल जाना होता था, मामू की साइकिल थी ही। तो क्या हुआ जो वह मामू के ही हिसाब से चलती थी।

अगले इतवार के बाद जो सोमवार आया, उसमें मामू आधी छुट्टी करके ही घर आ गए। साथ में वो हजरत भी थे जिनकी वाइस प्रिंसिपल से जान-पहचान थी। कृष्णनगर के जिस सरकारी स्कूल में दाखिला होना था, वह दोपहर को ही खुलता था। सुबह की शिफ्ट लड़कियों की थी।

पहुँचने पर वाइस प्रिंसिपल साहब ने हम लोगों को बाइज्जत अंदर बुलाया, कागजात देखे और दाखिले का फार्म भरने को दे दिया। कोई एक सौ दस रुपए नकद फीस भरनी थी, जो मामू ने फौरन दे दी। तभी मैंने देखा कि वह सौ का पत्ता जो मामी ने किसी शगुन की तरह चलते वक्त मामू की जेब में ठूँस दिया था, बड़ा काम आया। वर्ना बात किरकिरी हो सकती थी। चलते समय वाइस प्रिंसिपल साहब ने अदब से उठकर कहा, 'जाफर साहब, मैं तो पुरी साहब से बात कर ही लूँगा, पर आप भी उन्हें इन्फॉर्म कर दें कि जिस एडमिशन के लिए उनका आदेश था, हो गया है... उन्हें अच्छा लगेगा और

तसल्ली भी रहेगी।' मामू थोड़ा अचकचाए। कौन पुरी साहब मैं तो नाम पहली मर्तबा... मगर हड़बड़ी में आदाब करते खिलखिलाए, 'अरे जनाब, आपका लाख शुक्रिया... मैं उन्हें आज ही इत्तला कर देता हूँ।'

मैं समझ गया, शायद मामू भी, कि ये पुरी साब गोविल साब के ही हमबैच होंगे। मगर मामू को इस पर यकीन होते हुए भी, नहीं था।

थोड़ा समय लगा, मगर काम मुकम्मल हुआ। मैंने अम्मी को तीसरे खत में बता भी दिया। मेरी गैरहाजिरी में थोड़ा परेशान तो हो रही होंगी, मगर अब तसल्ली मिल जाएगी।

कितना सुकून मिलता है जिंदगी की गाड़ी के पटरी पर चलने में। सगीर भाई और मामू की तरह मेरा भी एक ढर्रा बन गया। सुबह उठकर वही एकाध घरेलू काम, फिर स्कूल का होमवर्क, नहाना-धोना, खाना और फिर स्कूल को रवाना। शाम को वापसी। फिर मामी या सबीना दीदी से थोड़ी बहुत गपशप। टीवी में एकाध प्रोग्राम और उसके बाद बाद खबरें। खबरों को मामू बहुत ध्यान से सुनते, गोया किसी झंझावात का अंदेशा हो। उस वक्त उनसे कुछ भी पूछना-कहना उन्हें नाकाबिले बर्दाश्त था।

इस बीच रोजे आए, ईद आई। मामू के एक खास दोस्त ने ढेर सारी ईदी भिजवाई। दिल्ली की पहली ईद पर लगा, यहाँ के बाशिंदों का कलेजा वाकई बड़ा होता है। मामी ने एक भगौना भर के सिवैयाँ बनाईं। मुहल्ले के लोग ईद मुबारक करने आए। मिसेज गोविल अकेली आईं। मामी की कटौरी भरी सिवैयों में से उन्होंने बमुश्किल एक चम्मच खाई। बाकी छोड़ दी।

लेकिन जिंदगी यूँ ही ढर्रे पर चलती रहे तो कैसे यकीन होगा कि ढर्रे पर चल रही है। उसमें कुछ धौल-धक्का तो लगना ही था। और जिस दिन यह लगा, सचमुच कयामत आ गई।

उस रोज सगीर भाई गुड़गाँव ही ठहरनेवाले थे। (गोविल साब के यहाँ फोन करके उन्होंने बतला दिया था)। खबरें हम सबने इकट्ठी ही सुनी थीं। दो चार सवाल लगाने के बाद मैं भी सो गया। हमारी सोने की जगह अमूमन तय थीं - हम दोनों भाई आगेवाले कमरे में (यानी ड्राइंग रूम में) तथा मामू, मामी और सबीना दीदी अंदरवाले कमरे में। और कोई आ जाता तो या तो हम लोग गुंजाइश करते या फिर छत जिंदाबाद। जुलाई का आखिर था तो उमस बेइंतहा थी। चंदौसी में जैसे बंदरों का कहर

है, पूर्वी दिल्ली में वैसे ही बिजली का है, फर्क यही है कि एक कब न आ जाए और दूसरी कब न चली जाए।

सबीना दीदी ने रुआँसी होकर उठाया, 'नजीर नजीर, उठना तो, अब्बा की तबीयत ठीक नहीं है!' पूरा घर रोशनी से सराबोर था। चुँधियाते हुए मैंने देखा तो कोई डेढ़ बज रहा था। दूसरे कमरे में पड़े फोल्डिंग पर मामू आँख मूँदे ही हाँफे जा रहे थे। मामी हथेली सहला रही थी। वह कुछ बुदबुदाते तो मामी पूछती, 'कैसा लग रहा है' वे बिना बोले दूसरे हाथ को डैने की तरह हवा में हिला देते... ठीक नहीं लग रहा है।

मैंने अपने घर में ऐसी हालत किसी की नहीं देखी थी।

सबीना दीदी ने बताया कि एक-डेढ़ घंटे से यही चल रहा है। बारह बजे के करीब बिजली गई थी, तभी मामू थोड़ा परेशान होकर उठ बैठे थे। पानी मँगाकर पिया, मगर फौरन ही उल्टी कर दी। वो तो अच्छा हुआ कि बिजली थोड़ी देर में ही आ गई। पहले कहने लगे, मतली हो रही है। उल्टी कर दी तो हमने सोचा राहत मिल जाएगी, मगर फिर कहने लगे पेट में दर्द-सा उमड़ रहा है। आधा गिलास नींबू पानी पिया **(**मुझे तसल्ली हुई कि आज सब्जी लाते में मैंने पचास ग्राम नींबू भी चढ़वाए थे।**)** मगर फिर भी घबराए जा रहे हैं।

और वाकई ऐसा था। मामू के टकलू सिर पर पुरजोर पसीना चुहचुहा रहा था।

मेरे लिए यह नजारा बड़ा अटपटा था। अम्मी अब्बा को सिर-दर्द या बुखार वगैरह में कराहते तो देखा था, मगर वह तो बाम की मालिश या सिर पर पट्टी खींच देने से काबू हो जाता था। यहाँ तो लग रहा था दिलोजान से प्यारे मेरे मामू को किसी ने चलती बस से फेंक दिया है और वह जोड़ों के दर्द से छटपटा रहे हैं।

एक बार तो मैं घबरा गया। किसी तरह अपनी घबराहट अपने तईं सँभालकर मैं मामू के करीब गया और दुलार करते हुए धीमे से पुकारा, 'मामू मामू'। जवाब की ख्वाहिश होती तब भी वे नहीं दे सकते थे क्योंकि ऐन वक्त पर उनकी खाँसी उखड़ गई, जिसमें 'अल्लाह-अल्लाह' की गुहार बड़ी बेकसी से शरीक होती जा रही थी। खाँसी का जलजला थमते ही बड़ी बेचैनी से अपनी मुंडी को वे तेजी से 'ऊँह-ऊँह' की बुदबुदाहट के साथ दाएँ-बाएँ घुमाते।

मैंने मामू की दूसरी हथेली अपने पंजों में थाम ली।

एक-दो दिन से मामू थोड़े बदन दर्द या हरारत की शिकायत-सी तो कर रहे थे लेकिन वो तो दिल्ली की बसों में सुबह-शाम सफर करनेवाला हर इंसान हरचंद करता होगा। उस दिन सगीर भाई के साथ जब लालकिला और जामा मस्जिद देखने गया था तो लौटकर मेरी भी हुलिया कैसी टाइट हो गई थी।

मुझे थोड़ी झुँझलाहट हुई कि सगीर भाई को घर से आज ही गैरहाजिर रहना था। सबीना दीदी तो निकम्मेपन की हद तक लद्दड़ हो रही थी। रात के इस पहर में मामू को कहाँ ले जाएँ, कैसे ले जाएँ रिक्शा भी नहीं मिलने की है और डॉक्टर या दवाखाना दवाखाने की याद आते ही मैंने मामी को तलब किया।

'अपना कोई डॉक्टर है मामी?'

'है तो सही, डॉक्टर अमीन है ना, शालीमार पार्क में। उसका दवाखाना भी है...' उनके जवाब के हर कतरे में गोया कई सवाल भी निहाँ थे।

'डॉक्टर अमीन के पास चलो!', डॉक्टर अमीन का जिक्र सुनकर मामू आँखें मूँदे-मूँदे ही फड़फड़ाए।

मुझे एक झपाटे से खयाल आया कि इस तूफान से गोविल अंकल ही निजात दिला सकते हैं।

और मैंने मामी की इजाजत लेकर उनकी डोरबेल बजा दी।

दरवाजा उन्होंने ही खोला। गहरी नींद से उठने का अजनबीपन उन पर अभी तक चस्पाँ था, लेकिन बिना एक पल जाया किए मैंने उन्हें मामूजान की कैफियत से वाकिफ कराया। 'एक मिनट' कहकर वे सिलवटी कुर्ते पायजामे की जगह दुरुस्त पैंट-शर्ट डाल आए (मुझे यह तकल्लुफी अंदाज दिल्ली की खास पहचान लगा, वर्ना अपनी चंदौसी में तो कुर्ते-पायजामे में लोग मुरादाबाद-बरेली छान आएँ।)। तब तक गोविलानी (मोहल्ले में सारी औरतों को उनके खाविंदों के नाम में इसी तरह तब्दीली करके जाना जाता था। इस सिलसिले में मोहल्ले की गुफ्तगू से ही मुझे पता चला था कि कमबख्तों ने मेरी मामी का नाम एक जर्रा और मरोड़कर, जाफरानी पत्ती कर दिया था) आंटी भी उठ आई थीं। उनके 'व्हाट हैपण्ड' का गोविल अंकल ने मुख्तसर जवाब देकर चाबियों का एक गुच्छा उठा लिया और मुझसे मुखातिब होकर बोले, 'चलो।'

घर आकर मैंने देखा मामूजान नमाज अदा करने के अंदाज में आँखें मूँदे बैठे थे। जैसे निचुड़ा हुआ नींबू। गोविल अंकल ने कुछ जान फूँकती आवाज में पुकारा, 'अरे जाफर साहब क्या हो गया, घबराइए मत।' फिर नब्ज थामकर यकीन दिलाते बोले, 'कोई खास बात नहीं है, बस घबराहट है।' मामू और हम सबकी हौसला-अफजाई में उनके अल्फाज बिलाशुबहा कामयाब थे। मामूजान के चेहरे पर मुस्कराहट की हल्की-सी किरच छिंटक आई तो मुझे घर पर किसी 'आदमी' के होने भर से मुस्तकिल राहत मिली। वर्ना मामी की लड़खड़ाती आवाज को देखकर तो लग रहा था कि मामू तो मामू, कहीं मामी न ज्यादा तकलीफ का सबब बन जाएँ। बीपी और शुगर तो उन्हें है ही।

दवाखाने की सलाह पर मामी ने शालीमार पार्क वाले डॉक्टर अमीन के दवाखाने का नक्शा गोविल साब को समझाया।

'जाफर साहब गाड़ी तक चल पाएँगे या उठाकर ले चलें।' कितनी मुरव्वत से पेश आते हैं गोविल साहब।

'अरे नहीं चला सकूँगा... ऐसी कुछ खास तकलीफ नहीं है... बस जी जरा ज्यादा घबरा रहा था, मगर अब तो बेहतर लग रहा है।' मामू ने गोविल साहब की पेशकश पर मरियल आवाज में पिघलकर कहा।

गोविल अंकल मामू को सहारा देते बाहर निकालने लगे तो मैंने दो रोज पहले ही शर्मा वर्दी वाले से स्कूल यूनीफार्म के लिए खरीदी हरे रंग की पैंट पहन ली। दरवाजे से निकलते ही मामी ने कुछ मुड़े हुए से नोट मेरी जेब में ठूँस दिए कि पता नहीं क्या जरूरत आन पड़े।

कुछ भी कहो - मामी की समझदारी काबिले-तारीफ है।

अमीन के दवाखाने के बरांडे में सो रही किसी दाई सरीखी औरत ने बताया कि डॉक्टर साब तो बाहर गए हुए हैं 'दूसरा कोई डॉक्टर' के जवाब में उसने दो टूक 'नहीं' कहा और लेटे-लेटे ही करवट बदल ली।

मुझे ताज्जुब हुआ, क्या दिल्ली में ऐसे भी दवाखाने होते हैं

'अब क्या करें जाफर साब, कहाँ चलें' अपने फर्ज की एक किश्त पूरी करने के अंदाज में गोविल साब ने मामू से पूछा जो पिछली सीट पर अधलेटे पड़े थे।

'कोई और दवाखाना नहीं खुला होगा' मामूजान ने गोविल साब की ओर ही खुद को लुढ़काया।

'ठीक है, मैं आपको अरोड़ा के यहाँ लिए चलता हूँ, वो जरूर खुला होगा।' गोविल ने तुरंत फैसला किया।

अरोड़ा का दवाखाना कोई मील भर दूर होगा। दवाखाना क्या, बीच बाजार में बहुमंजिला कोठी थी। दरवाजे पर मरीज के मालूमात पूछकर हमें पाँचवीं मंजिल पर जाने को बोल दिया गया, जिसके लिए एक कद्दावर लिफ्ट मौजूद थी। डॉक्टर अरोड़ा तो नहीं थे, लेकिन डॉक्टर साहनी नाइट ड्यूटी पर थे। गोविल अंकल ने डॉक्टर अरोड़ा से अपनी जान-पहचान का हवाला देकर बटुए से निकालकर एक शिनाख्ती कागज डॉक्टर साहनी को पकड़ाया और तुरंत अपने करीबी दोस्त को अटैंड किए जाने की गुजारिश की। आनन-फानन में, एक तैयार बैड पर मामू को लिटाकर डॉक्टर मामू की जाँच करने लगा। वहीं मैंने देखा कि छोटी-सी मशीन से एक लंबा कागज ऊदबिलाव-सी लाइन बनाता हुआ बाहर

निकल रहा था। मुझे बाद में पता चला कि इसे ई.सी.जी. कहते हैं। खैर मुझे क्या, ये तो डॉक्टर जानें। थोड़ी देर बाद मामू के मुँह में थर्मामीटर भी लगा दिया। बाद में जब डॉक्टर साहनी मामू की नब्ज का मुआयना करने लगे तो उनका तारुख भी लेने लगे।

'आप कहाँ काम करते हैं?'

'सेंट्रल गवर्नमेंट में।'

'क्या करते हैं?'

'एकाउंटेंट हूँ।'

'कितनी उम्र है?'

'उनसठ।'

एक दो सवालों की लय बनते ही मामू की आँखें तो खुल गईं, मगर बोझिल और बिलाजुंबिश वे अब भी थीं।

'शाम को कुछ बाहर-वाहर तो नहीं खाया पिया था?'

'अरे कहाँ डॉक्टर साहब, घर पैई उड़द की दाल बनी थी।' मामू अपने खास अंदाज में आने लगे।

'बस यही तो गड़बड़ कर दी आपने' साहनी ऐसे बोले गोया सुराग पकड़ लिया हो।

मामू कसूरवार से देखते रहे, बोले कुछ नहीं।

अब डॉक्टर उनकी नब्ज छोड़ स्टैथिस्कोप लगाकर जाँच करने लगा। बोलना मगर मुसलसल था।

'इस उम्र में रात को उड़द की दाल गड़बड़ नहीं करेगी तो कब करेगी।' साहनी के नतीजे में तोहमत थी।

मैं मन ही मन बड़ी राहत महसूस कर रहा था। एक तो यही देखकर कि मामू कम से कम ज्यादा आसानी से बोल बतिया रहे थे, दूसरे, इस खयाल से भी कि चलो थोड़ी बदहजमी या गैस-वैस का ही मुआमला निकला। अपने कानों से स्टैथिस्कोप का शिकंजा ढीलाकर साहनी किसी अंजाम तक पहुँचने की कशमकश करते बोले, 'जाफर साब, आपने कभी बीपी चैक करवाया है?'

'जी हाँ।'

मैं और गोविल मामू के सिरहाने खड़े थे। फिर भी हमने गौर किया कि यह जवाब देते वक्त मामू के चेहरे पर एक यकीन चस्पाँ हो गया था।

'कागजात हैं?'

'वो तो नहीं हैं।'

'और शुगर।'

'वो भी कराया था।'

'कब?'

'कोई चार साल हो गए होंगे... दफ्तर में ही हुआ था सबका...!'

मामू के जवाब से डॉक्टर साहनी का सारा हौसला काफूर हो गया। नर्सों को बोतल चढ़ाने के इंतजामात का हुक्म देते हुए वे बाहर निकल आए। हम दोनों कोई राज जानने के इस्तियाक से उनके साथ हो लिए।

अपनी डैस्क पर जब वे आकर बैठे तो गोविल अंकल ने कुछ खौफ खाते हुए, शाइस्तगी से अंग्रेजी में पूछा...

'एवरीथिंग ओके डॉकसाब?'

इस पर डॉक्टर ने थोड़ा आँखें तरेरकर हमें देखा। बहुत धीमे, मगर सख्त लहजे में अंग्रेजी में ही कहा, 'गुड दैट यू ब्रॉट हिम इन टाइम मिस्टर गोविल! ही हैज जस्ट सर्वाइव्ड ए मेजर अटैक...।'

गोविल साहब के चेहरे पर एकदम मुर्दनगी पसर गई।

'अच्छा।'

किसी यकबयक लगे सदमे के तहत उनकी आवाज आई और नीचेवाले होंठ को ऊपर के दाँतों में दबोच लिया।

इसी दरमियान साहनी ने अपने नाम की पर्ची पर एक गोली नीचे के मेडिकल स्टोर से लाने को गोविल को बोल दिया। पर्ची को पहल करके मैंने ले लिया। पूरा मर्ज मेरी समझ में नहीं आया था मगर अहसास हो गया था कि कुछ संगीन जरूर हुआ था मामू को।

तभी किसी नीम जिबह किए जानवर की माफिक मामू की चीख हम तक पहुँची, 'आ...ह...या...मेरे...परवरदिगार...ह...म' हम सभी दौड़कर उधर पहुँचे तो मामू मिर्गी के मरीज की तरह दर्द से बेकाबू हो रहे थे। अपनी छाती पर ही उन्होंने हवक लिया था और नाक का गीला भी मुँह के आसपास फैल गया था।

मेरी धुकधुकी बढ़ गई।

डॉ. साहनी पास खड़े रहकर गौर से मामू पर नजर गड़ा रहे थे। उन्होंने इशारे से ही हमें कुछ भी न बोलने या करने की हिदायत दी तो मुझे मामू की बेबसी पर बड़ा तरस आया। शुक्र यही था कि चंद लमहों की मुश्किल के बाद मामू खुद बखुद निढाल पड़ गए। (डॉ. साहनी ने बाद में बताया कि यह मस्क्यूलर पेन था।) उसी दौरान शायद

मामू को ग्लूकोज की बोतल चढ़ा दी गई थी, क्योंकि तभी साहनी की लिखी गोली को नीचे से लाने के लिए गोविल साब ने मुझे टहेल दिया था।

दवाई की दुकान पर एक और सदमा लगना था।

डॉ. साहनी की लिखावट की वह पर्ची जब मैंने दिखाई तो उस नामाकूल शख्स के मुँह से निकला, 'अड़तीस सौ'। मेरे 'एक पत्ता नहीं, एक ही गोली' की सफाई दिए जाने पर उसने नीम खुमारी की हालत में ही झिड़की दी 'हाँ हाँ भाई, एक सिंगल गोली की ही बात कर रहा हूँ।' मामी के पकड़ाए तुड़े-मुड़े नोटों को मैंने ध्यान से गिना तो पचास-पचास के चार नोट निकले। मैं तुरंत गोविल अंकल की तरफ लपका और उनसे अपनी परेशानी कही। उन्होंने फटाफट अपना बटुआ खोला और आठ नोट मेरी तरफ बढ़ा दिए। मैंने 'आठ सौ नहीं, अड़तीस सौ' की सफाई दी तो दुलार से भूल माफ करती अदा में बोले, 'पाँच सौ के हैं।' मैं सकपका गया। फिर भी एक बात जेहन में कौंधे बिना नहीं रही कि अभी तो उनके बटुए में इस कदर तो चार-पाँच हजार और होंगे!

खैर, दवाई आई और मामू को दे दी गई।

सुबह तक उनकी हालत खतरे से बाहर थी। अलबत्ता उसी निगरानी में उन्हें दो-तीन दिन और रहना था। उस रात गोविल अंकल मेरे साथ लगातार मौजूद रहे। हम कई मर्तबा उझककर मामू को देख आते थे जो या तो नींद में रहे या बेहोशी में। वो तो सुबह पता चला कि उनके दिल की धड़कनों को लगातार दर्ज करता एक कंप्यूटर डॉक्टर साहनी की डैस्क की कोख में रखा हुआ था जिससे हर पल उनकी हालत पर नजर रखी जा रही थी।

मुझे पहली बार डॉक्टर और डॉक्टरी की पढ़ाई को सलाम करने का मन हुआ।

तीन रोज तो मामू को उसी कमरे में ग्लूकोज पर ही रखा गया। फिर अलग कमरे में इलाज चलने लगा। हादसे के अगले रोज ही सगीर भाई ने छुट्टी ले ली थी और इरशाद भाई बंगलौर से आ गए थे। बड़ी दीदी नगमा तो गया से बच्चों की वजह से नहीं आ पाई थीं, मगर उनके शौहर यानी शकील अहमद जरूर तशरीफ ले आए थे। मामू के लिए उन्होंने दवाखाने में और दौड़ धूप करने में पूरी जिम्मेवारी उठाई थी। इस दौरान अड़ोसी-पड़ोसी समेत दफ्तरी और मामू के दूसरे मिलने-जुलनेवालों का आना-जाना लगा ही रहा। मैंने गौर किया कि पूरे वाकए में मामू अब गोविल अंकल के किरदार को उनकी गैर मौजूदगी तक में, अनजान किस्म के लोगों के बीच भी दर्ज करने में नहीं चूकते थे। गोविल साहब पर पहले बदगुमाँ दिखनेवाले मामू अब सरेआम अपनी जान

को गोविल की मेहरबानी मानने लगे थे। यह तब्दीली मामूली न थी, हालाँकि इसके पीछे गोविल साहब की तात्कालिक मदद के अलावा दवाखाने के बिल में कराई गई भारी रियायत का कितना योगदान था, कहना मुश्किल है।

जो भी हो, मामू अब गोविल के मुरीद थे।

दवाखाने में रहते-रहते ही, उनकी तीमारदारी के बहाने गुफ्तगू करते-करते, मैंने गौर किया कि मामू के रवैये में भारी तब्दीली आ गई थी। बहुत खुशहाली जैसी चीज तो हमारे पूरे खानदान में नहीं नजर आती है, मगर अल्लाह के फजल से बाइज्जत गुजर-बसर हो ही रही होती है। स्कूल खुले ही थे, इसलिए आन पड़ने पर मैं छुट्टी कर लेता था। आधा दिन तो अगरचे हमेशा ही मुहैया था। ऊब-ऊकताकर मामू कभी-कभार मुझसे कहते, 'नजीर मियाँ, तुमको लाया था यहाँ पढ़ने-लिखने के वास्ते और देखो कैसे अपनी तीमारदारी में जोत रखा है।' मामू को इस पर मैं डपट-सा देता। दवाखाने के उस अलसाए माहौल में ही मैंने यह भी देखा कि सबीना दीदी के निकाह और इरशाद-सगीर भाई की मुकम्मल नौकरियों को लेकर मामू के तहत अक्सर ही कोई बेचैनी सिर पटकती रहती थी। मिलनेवाले या रिश्तेदार तसल्ली देते तो वे तरकश का आखिरी तीर छोड़ने से बाज न आते। 'एक साल बचा है रिटायरमेंट का, उसके बाद तो मुश्किलें और बढ़नी ही होनी हैं। वो तो भला हो सरकार का जो ऐज को बढ़ाकर साठ कर दिया, नहीं तो पारसाल ही घर बैठ चुका होता।'

घर के खर्चों की क्या हालत थी, इसका तो मुझे क्या इल्म होना था, मगर यह हकीकत है कि इरशाद भाई के बंगलौर जाने से फिलहाल मामू किसी तंग गली से गुजरते लगते थे। कंप्यूटर के जमाने में जो तालीम वो हासिल कर रहे थे, उसके बरक्स मामू की पेशानी पर सलवटों के वजूद का कोई सबब नहीं था, मगर यह जमीनी हकीकत थी तो थी। हादसे से पहले की एक वारदात याद है। मुझे हल्का वायरल हुआ था, जिसकी वजह से शाहदरा मंडी नहीं जा पाया था। सुबह के वक्त जब फेरीवाले ने आवाज लगाई तो मामूजान बाहर निकले और आधा किलो लौकी का भाव ताव करने लगे। वह किसी भी हालत में छह रुपए से नीचे नहीं उतरना चाहता था, जबकि मामू सीधे-सीधे पाँच रुपए देने की सहूलियत उठाना चाहते थे। जब वह नहीं माना तो मामू ने थोड़ा धनिया और हरी मिर्च यूँ ही डलवाने की माँग की। लेकिन सब्जीवाला जाहिरा तौर पर कमजर्फ था। उसने मामू के हाथ से लौकी झपटकर छह रुपए उनकी हथेली पर मार दिए और चलता बना। मामू का मुँह उतर गया, लेकिन हार उन्होंने भी कबूल नहीं की 'जा चला जा... तेरे जैसे भतेरे आते हैं यहाँ... हम किसी और से ले लेंगे।'

मैं बिस्तर पर पड़े-पड़े हो रही बोरियत की वजह से उठकर दरवाजे पर आकर इस वारदात का चश्मदीद गवाह न होता तो कभी न जान पाता। और अब जब मामू घर वापस आ गए तो भी खर्चे के बारे में उनकी मीनमेख बदस्तूर रही। डॉक्टर अरोड़ा, डॉक्टर साहनी उनसे ताकीद करते कि उनके बच्चे, इंशाअल्ला, लायक निकले हैं और जल्द ही उनकी माली हालत ठीक हो जाएगी, इसलिए घबराने या चिंता करने जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए। मामू का भी इस मामले में इत्तफाक था, मगर ज्यादा आशुफ्ता शायद वो सबीना दीदी को लेकर रहने लगे थे। कभी चाय या पानी-वानी देने के कारण सबीना दीदी उनके सामने आ जाती तो उसके बाद मामू की जुबान से ऐसा कुछ जरूर निकलता जिससे उनकी चिंताएँ जाहिर हो जातीं। उसी बहाव में एक रोज वे पीएफ और ग्रेच्युटी में जमा पैसे का भी मोटे तौर पर हिसाब लगा बैठे थे। धुंध को छाँटते हुए फिर बोले, 'अपना गुजारा तो पेंशन में ही हो जाएगा। नजीर मियाँ तुम्हारी वजह से हमारे बुढ़ापे में रौनक रही आएगी।'

इन बातों का अर्क मेरे जेहन में पचास फीसदी से ज्यादा नहीं आ पाया था।

घर आने के कुछ और चंद रोज बाद उन्होंने सुबह शाम गली में ही टहलना शुरू कर दिया तो किसी हमदर्द ने इसरार किया कि जाफर साहब जो हुआ सो हुआ, मगर आगे के लिए पूरा एहतियात बरतिए।

'अमा, पूरा क्या, पूरे से भी ज्यादा बरत रहा हूँ।'

'मसलन?'

'मिर्च-मसाले बंद, चिकनाई बंद, सुबह शाम एक सिगरेट का कश ले लिया करता था, वो भी बंद। सैर तो करता ही हूँ... दवाइयाँ नमाज की तरह टाइम से...।'

'अजी ये तो ठीक है सब, मगर नाकाफी है।'

'तो मियाँ और क्या करना पड़ेगा?'

'करना ये पड़ेगा कि जब फुर्सत हो जाए, सहूलियत से, एंजियोग्राफी और एंजियोप्लास्टी करवा लीजिए।'

'वो क्या होती है' मामू सकते में आकर बोले।

'उसमें होता ये है कि दिल से निकलनेवाली जो बाल्व होती है, उसके कचरे को एक बुलबुला घुसाकर डॉक्टर निकाल देता है, जैसे किसी नाली में बाँस डालकर सफाई करते हैं।'

उनकी बात पर मामू पहले तो चकित हुए मगर बाद में पराजित भाव से हिनहिनाने लगे। इसका अहम सबब ये था कि उन हजरत ने दोनों तकनीकों-तरकीबों में होनेवाले खर्च का जो मोटा-मोटा हिसाब बतलाया था, कोई एक लाख के आसपास बैठ रहा था - मतलब ताउम्र कटे पीएफ फंड की रकम के तीन चौथाई से भी ज्यादा। दिल की किसी नली की साफ-सफाई पर इतनी रकम खर्चना मामू को सरासर नागवार था। यह उन्होंने कहा चाहे न हो, मगर इन दिनों उनके साथ उठते-बैठते मैं उनकी इतनी समझ और सरोकारों से वाकिफ होने लगा था। मुझे पूरी तरह तो समझ नहीं आता था कि उनकी चिंताओं का सबब सबीना दीदी ही है, रिटायरमेंट या हर रोज होनेवाला दवाई-गोलियों का खर्चा या कुछ और।

एक रोज शाम को सैर करते वक्त ही पता नहीं किस बात पर मुझसे बोले, 'नजीर मियाँ खुदा की खुदाई को भी क्या कहिए, पहले गरीब आदमी को हैजा-बुखार होता था, पीलिया-मलेरिया होते थे और अब देखो, हार्ट टैक भी होने लगे, कोई गुर्बत से लड़े या बीमारी से, पर ठीक है, जो ऊपरवाले की मर्जी।'

बहरहाल मुझे यही लगता है कि दिल जैसे खौफनाम मरज के लिए पैसे को लेकर उतनी कोताही जायज नहीं ठहराती जा सकती थी जितनी मामू बारहा करने लगते थे। मैं तो बस यही कह सकता हूँ कि उन्होंने ज्यादा दुनिया देखी थी, तो हो सकता है, उनके मुताल्लिक चीजों के वे बेहतर जज हों। अब जैसे उस दिन मैं मामू को रुटीन चैकअप कराके अरोड़ा के दवाखाने से लौट रहा था तो मामू की ऑटोवाले के साथ बदमगजी हो गई।

'कितना हुआ?' मैंने कूदकर ऑटोवाले से पूछा।

'सत्रह रुपए।'

'पंद्रह होते हैं भाई।' मामू ने तरजीह की, हालाँकि वे अभी सलीके से उतरकर खड़े भी नहीं हुए थे।

'बाऊजी मीटर देख लो और चार्ट मिला लो।'

'अरे मीटर क्या देख लें, उसे तो तुम लोग पहले से ही तेज करके रखते हो।' मामू भड़क उठे।

मैंने चार्ट से रीडिंग मिलाई तो सोलह रुपए नब्बे पैसे बन रहे थे।

'बाऊजी मुझे बेईमानी करनी होगी तो आपसे ही, दो रुपए की करूँगा।' ऑटोवाले ने शराफत की अड़ंगी डाली।

'अरे तो अंधेर मच रहा है, जाते टैम पंद्रह में गए थे तो...' मामू का रुख सख्त होने लगा।

'बाऊजी आप एक पैसा मत दो, पर गलत बात नहीं करो।'

'अच्छा गलत बात हम कर रहे हैं कि तू कर रहा है।' मामू अपनी मरियल आवाज में ही बिफरे।

इस पर वह कमबख्त ऑटोवाला सरासर बदतमीजी पर उतर आया, मगर मामू को अपने मुताबिक जितने पैसे देने थे, उतने ही दिए। ऑटोवाला पता नहीं क्या-क्या बड़बड़ाता चला गया।

उसी दिन, शाम को, गोविल साहब मामू का हालचाल लेने आए थे। मामू के दफ्तर से भी कोई आया हुआ था। मामू ने बड़े रौब से गोविल साहब के डिप्टी कमिश्नर से अपने हमदफ्तर की शिनाख्त करवाई। बीमारियाँ, अस्पताल और डॉक्टरों के रोज ऊपर नीचे होते ताल्लुकात पर नुक्ताचीनी करने के बाद बात सीधे-सीधे जिंदगी के आखिरी मुकाम यानी मौत के ऊपर केंद्रित होने लगी, जिसकी बुनियाद में गोविल साहब ने कैंसर के कारण अपने एक करीबी रिश्तेदार की मौत की मिसाल चर्चा में रखी थी।

'मेरे अपने अनुभव में आजकल जितनी मौतें कैंसर से हो रही हैं, उनका किसी और बीमारी के कंपैरिजन में कोई मुकाबला नहीं है। जाफर साहब, हार्ट अटैक भी नहीं। बाकी सब बीमारियों को पहले या बाद में कंट्रोल करने के लिए आप कुछ कर तो सकते हैं! या उनके लिए किसी न किसी हद तक जिम्मेवार होते हैं! मगर कैंसर का क्या दो साल के बच्चे को हो रहा है! एकदम सात्विक जीवन जीनेवाली औरतों को हो रहा है! और डॉक्टर क्या करते हैं अंधों का हाथी। रेडियोथैरेपी तो कभी कीमोथैरेपी। और इनसे भी बात न बने तो सीधे-सीधे मॉरफीन और पता नहीं क्या-क्या...'

गोविल की बातों को सभी अब तक कान लगाकर सुन रहे थे। मामू के हमदफ्तर ने भी कैंसर के शिकार हुए अपने मिलने-जुलने वालों के किस्से सुनाए। मामूजान की उस बातचीत में शिरकत सबीना दीदी को चाय का हुक्म देने के सिवाय गोविल साब से एक सवाल पूछने में ही थी।

'अच्छा जी ये बताइए, हम तो आए दिन अखबारों में सुनते हैं कि नोएडा में धर्मशिला बन गया, रोहिणी में राजीव गांधी के नाम पर बन गया, ऑल इंडिया और सफदरजंग तो पहले से ही हैं... तो फिर ये सब क्यों चल रहे हैं कुछ तो...' अपनी बात की हामी भरवाने की नीयत से मामू ने अपनी गर्दन हिलाई।

'बस तीर तुक्के के हिसाब से चल रहे हैं। किसी मरीज की किस्मत अच्छी हो, तो वो कहते हैं, वो बचा सकते हैं। भलेमानसों से पूछो कि अगर किस्मत ही अच्छी हो तो क्या कैंसर ही होगा किसी को। अच्छा आप ये बताइए जाफर साब, आपने आज तक किसी कैंसर पेशेंट को भला चंगा होते देखा है?'

गोविल साब का लहजा और दलील दोनों लाजवाब थे। अभी तक अमूमन चुप्पी साधे मामू ने फिर जो बात या फलसफा दागा, उसका उनके पहले के नजरिए से मीलोंमील कोई ताल्लुक न था।

'गोविल साब, मेरी बात सुनिए...ये डॉक्टर लोग किसी को क्या भला-चंगा करेंगे इनके अख्तियार में है क्या... पैदाइश की तरह इनसान की मौत भी खुदा उसी वक्त मुरर्रर कर देता है जब वह माँ के पेट में कंसीव होता है। और ये ही क्यों, उसे किस वक्त क्या बीमारी होनी है और क्या होना है, सभी कुछ खुदा के बहीखाते में दर्ज हो जाता है। ठीक है हम लोगों का फर्ज है, फितरत है, हकीमों डॉक्टर के पास जाना। जाना भी चाहिए, मगर हकीकत यही है कि जो होना है, होना ही है।'

मैं हैरान था। ये मामूजान ही बोल रहे हैं। ऐसे वाइज बनकर! डॉक्टरों की बदौलत मौत के कुएँ से चार हफ्ते पहले निकलकर आए मेरे ही मामूजान! कहाँ तो डॉक्टरों और गोविल अंकल तक को अपनी जिंदगी का सबब मानने से नहीं हिचकिचा रहे थे और आज यानी अभी... मगर मामू का छेड़ा मुद्दा फिलहाल था ऐसा कि उसकी कोई काट थी भी और नहीं भी। बशर्ते आपके पास उस मुबाहिसे पर जुगाली करने की फुर्सत हो जो न उस वक्त गोविल साहब के पास थी और न दूसरे महाशय के पास।

इस दरम्यान हुआ यह कि मामू की सेहत रफ्ता-रफ्ता और सुधरी। मैं स्कूल जाने लगा। इरशाद भाई तो पहले ही बंगलौर चले गए थे। सगीर भाई अपने हाकिम के

ऑडिटों पर जाने ही लगे थे। मामू को अभी कुछ हफ्ते और आराम फरमाना था, जिसकी मार्फत मामी और सबीना दीदी को घर पर एक्स्ट्रा काम मिल गया था।

एंजियोग्राफी और एंलियोप्लास्टी जैसी खालिस अमीर और अय्याश लोगों की चोंचलेबाजी को तो मामू ने कब का दरकिनार कर दिया था। उन्हीं के लफ्जों में, जब तक अल्लाताला की उन पर नवाजिश कायम है, जिंदगी चलती रहेगी और जिस रोज यह बंद हो गई तो क्या कर पाएगा पेसमेकर और क्या करेगी एंजियोप्लास्टी! और फिर ये कोई जरूरी है कि जान दिल के दौरे से ही जाए उस दिन गोविल साब क्या-क्या नहीं बता रहे थे - कैंसर के बारे में। असल चीज वही है कि दुनिया-जहान से खुद की बही में आपका हिसाब चुकता हो गया, मियाद पूरी हो गई, तो उसे चालू करना फरिश्तों के भी बस में नहीं है, इनसान की तो बिसात क्या।

दवाखाने से वापसी के नौवें हफ्ते में एक रोज मामूजान को शाम के वक्त तकरीबन उसी तरह की बेचैनी हुई जैसी उस रात हुई थी।

मगर इस मर्तबा उन्हें डॉक्टर अरोड़ा के दवाखाने तक ले जाने के लिए गोविल साब की गाड़ी की दरकार नहीं थी।

https://www.hindiadda.com/marj-oma-sharma/